International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 11 Issue 12, December- 2021
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018 |**Thomson Reuters Researcher ID: L-5236-2015**

भारत में जलवायु परिवर्तन के आर्थिक एवं भौगोलिक प्रभाव

डॉ कन्हैया लाल सारण
राजकीय कन्या महाविद्यालय मगरा पूंजला जोधपुर

सार
जलवायु परिवर्तन आज विश्व के समक्ष प्रमुख पर्यावरणीय चुनौतियों में से एक है। भारत कई समस्याओं से जूझ रहा है. जलवायु परिवर्तन कृषि, जल संसाधन, वन और जैव विविधता, स्वास्थ्य, तटीय प्रबंधन और तापमान में वृद्धि पर विभिन्न प्रतिकूल प्रभावों से जुड़ा है। कृषि उत्पादकता में गिरावट भारत पर जलवायु परिवर्तन का मुख्य प्रभाव है। अधिकांश जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। जलवायु परिवर्तन पारिस्थितिक और सामाजिक आर्थिक प्रणालियों पर अतिरिक्त तनाव का प्रतिनिधित्व करेगा जो पहले से ही तेजी से औद्योगीकरण, शहरीकरण और आर्थिक विकास के कारण जबरदस्त दबाव का सामना कर रहे हैं। यह पेपर भारतीय संदर्भ में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव और इसके विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण करता है।
मुख्य शब्द: जलवायु, परिवर्तन, भौगोलिक

परिचय
ऐसा माना जाता है कि वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड (CO2) और मीथेन (CH4) जैसी सूक्ष्म गैसों का संचय, जो मुख्य रूप से जीवाश्म ईंधन के जलने जैसी मानवजनित गतिविधियों के कारण होता है, पृथ्वी की जलवायु प्रणाली को बदल रहा है। इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (आईपीसीसी) ने अपनी चौथी मूल्यांकन रिपोर्ट में कहा कि "जलवायु प्रणाली का गर्म होना अब स्पष्ट है, जैसा कि वैश्विक औसत हवा और समुद्र के तापमान में वृद्धि, बड़े पैमाने पर बर्फ और बर्फ के पिघलने और बढ़ती हुई टिप्पणियों से स्पष्ट है।" वैश्विक सील स्तर" भारत के पास जलवायु परिवर्तन के बारे में चिंतित होने का एक कारण है, क्योंकि एक बड़ी आबादी अपनी आजीविका के लिए कृषि, वानिकी और मत्स्य पालन जैसे जलवायु-संवेदनशील क्षेत्रों पर निर्भर करती है। वर्षा में गिरावट और तापमान में वृद्धि के रूप में जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभाव के परिणामस्वरूप देश में आजीविका के मुद्दों की गंभीरता बढ़ गई है। जलवायु परिवर्तन पारिस्थितिक और सामाजिक आर्थिक प्रणालियों पर अतिरिक्त तनाव का प्रतिनिधित्व करेगा जो पहले से ही तेजी से औद्योगीकरण, शहरीकरण और आर्थिक विकास के कारण काफी दबाव में हैं। जलवायु परिवर्तन मानवता के सामने सबसे महत्वपूर्ण वैश्विक पर्यावरणीय चुनौतियों में से एक है, जिसका खाद्य उत्पादन, प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र, मीठे पानी की आपूर्ति, स्वास्थ्य आदि पर प्रभाव पड़ता है। नवीनतम वैज्ञानिक मूल्यांकन के अनुसार, पृथ्वी की जलवायु प्रणाली तब से वैश्विक और क्षेत्रीय दोनों स्तरों पर स्पष्ट रूप से बदल गई है। पूर्व-औद्योगिक युग. इसके अलावा, साक्ष्य से पता चलता है कि पिछले 50 वर्षों में देखी गई अधिकांश वार्मिंग (प्रति दशक 0.1 डिग्री सेल्सियस) मानवीय गतिविधियों (आईपीसीसी, 2017ए और 2017बी) के कारण है।
जलवायु परिवर्तन पर अंतर सरकारी पैनल का अनुमान है कि 2100 तक वैश्विक औसत तापमान 1.4 और 5.8 डिग्री सेल्सियस के बीच बढ़ सकता है। इस अभूतपूर्व वृद्धि से वैश्विक जल विज्ञान प्रणाली, पारिस्थितिकी तंत्र, समुद्र स्तर, फसल उत्पादन और संबंधित प्रक्रियाओं पर गंभीर प्रभाव पड़ने की उम्मीद है। इसका प्रभाव उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में विशेष रूप से गंभीर होगा, जिसमें मुख्य रूप से भारत सहित विकासशील देश शामिल हैं। 1992 में, रियो डी जनेरियो में पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (यूएनसीईडी) ने एफसीसीसी (जलवायु परिवर्तन पर फ्रेमवर्क कन्वेंशन) का नेतृत्व किया, जिसने सामान्य लेकिन विभेदित जिम्मेदारियों को पहचानते हुए, वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों के अंतिम स्थिरीकरण के लिए रूपरेखा तैयार की। संबंधित क्षमताएं, और सामाजिक और आर्थिक स्थितियाँ। कन्वेंशन 1994 में लागू हुआ। इसके बाद, 1997 में क्योटो प्रोटोकॉल, जो 2015 में लागू हुआ, ने सतत विकास सिद्धांतों का पालन करते हुए वातावरण में ग्रीनहाउस गैस सांद्रता को स्थिर करने के महत्व पर जोर दिया। प्रोटोकॉल में इस संबंध में दिशानिर्देश और नियम दिए गए हैं कि भाग लेने वाले औद्योगिक देश को छह ग्रीनहाउस

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 11 Issue 12, December- 2021
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018 |Thomson Reuters Researcher ID: L-5236-2015

गैसों, अर्थात् कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, क्लोरोफ्लोरोकार्बन, हाइड्रोफ्लोरोकार्बन और पेरफ्लूरोकार्बन के उत्सर्जन को किस हद तक कम करना चाहिए। भारत की जनगणना 2017 के अनुसार, भारत की शहरी आबादी 286 मिलियन या 1.02 बिलियन की कुल आबादी का 27.80% थी। वर्ष 2012 तक यह आबादी बढ़कर 368 मिलियन होने का अनुमान है। शहरी आबादी 5,161 शहरों में रहती है और भारत के शहर गंभीर जल एवं स्वच्छता तनाव का सामना कर रहे हैं। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत की जल अर्थव्यवस्था इस बात को दर्शाती है कि भारत में तेजी से पानी की कमी हो रही है और 2020 तक यह गंभीर तनाव में होगा, और अनुमान है कि 2050 तक मांग आपूर्ति से अधिक हो जाएगी। तेजी से बढ़ते आर्थिक परिदृश्य में, पानी की मांग बढ़ना स्वाभाविक है। वायुमंडल में लाखों टन कार्बन डाइऑक्साइड का निरंतर और बेरोकटोक उत्सर्जन, भले ही मुख्य रूप से कुछ देशों या क्षेत्रों से उत्पन्न हो, वैश्विक और स्थायी जलवायु परिवर्तन का कारण बन सकता है, जिसके संभावित विनाशकारी परिणाम हो सकते हैं जैसे कि समुद्री जल में वृद्धि और कई द्वीपों का जलमग्न होना। और तटीय क्षेत्र, और परिवेश के तापमान में वृद्धि के कारण फसल पैटर्न और कृषि उत्पादकता पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा (द हिंदू सर्वे ऑफ एनवायरनमेंट, 2009)। भारत एक बड़ा विकासशील देश है, जिसकी लगभग 700 मिलियन ग्रामीण आबादी सीधे तौर पर अपने निर्वाह और आजीविका के लिए जलवायु-संवेदनशील क्षेत्रों और पानी, जैव विविधता, मैंग्रोव, तटीय क्षेत्रों और घास के मैदानों जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर करती है। इसके अलावा, शुष्क भूमि वाले किसानों, वनवासियों और खानाबदोश चरवाहों की अनुकूलन क्षमता बहुत कम है। प्रतीकात्मक रूप से महत्वपूर्ण होने के बावजूद, क्योटो प्रोटोकॉल को अब व्यापक रूप से 'विफलता' माना जाता है क्योंकि इसने न तो वैश्विक स्तर पर उत्सर्जन में कटौती की पहल की है और न ही इसने ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में और कटौती का वादा किया है। वैज्ञानिकों ने लंबे समय से चेतावनी दी है कि क्योटो प्रोटोकॉल का 100% पालन भी जलवायु में परिवर्तन को सीमित करने में कुछ नहीं करेगा, फिर भी इस नीति की विफलता को बनाने में विश्व स्तर पर लगभग 15 लंबे वर्ष व्यतीत हो गए हैं। क्योटो प्रोटोकॉल में शमन पर लगभग विशेष ध्यान देना विकासशील देशों के हितों के विरुद्ध है। समृद्ध औद्योगिक राष्ट्रों के अस्थिर उपभोग पैटर्न जलवायु के खतरे के लिए जिम्मेदार हैं; वैश्विक आबादी का केवल 25% इन देशों में रहता है, लेकिन वे कुल वैश्विक CO2 उत्सर्जन का 70% से अधिक उत्सर्जित करते हैं और दुनिया के कई अन्य संसाधनों का 75 से 80% उपभोग करते हैं (पारिख एट अल., 1991)। भारत को जलवायु परिवर्तन को लेकर चिंतित होना चाहिए क्योंकि इसका देश पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। जलवायु परिवर्तन के सभी संभावित परिणामों को अभी तक पूरी तरह से समझा नहीं गया है, लेकिन प्रभावों की मुख्य 'श्रेणियाँ' कृषि पर प्रभाव, समुद्र के स्तर में वृद्धि के कारण तटीय क्षेत्रों का जलमग्न होना और चरम घटनाओं की बढ़ती आवृत्ति हैं जो भारत के लिए गंभीर खतरा पैदा करती हैं। पेपर में भारत पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव, विशेष रूप से कृषि, जल, स्वास्थ्य, वन, समुद्र स्तर और जोखिम घटनाओं पर विस्तृत चर्चा की गई है।

भारत से ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन

पूर्व-औद्योगिक काल से वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों की बढ़ती सांद्रता के कारण उत्पन्न होने वाला जलवायु परिवर्तन एक गंभीर वैश्विक पर्यावरणीय समस्या के रूप में उभरा है और मानव जाति के लिए खतरे और चुनौतियाँ पैदा कर रहा है। जलवायु परिवर्तन को सतत विकास प्रक्षेप पथ में संभावित महत्वपूर्ण कारकों में से एक के रूप में पहचाना जा रहा है और एक उभरता हुआ अंतरराष्ट्रीय साहित्य है जो अध्ययन के पद्धतिगत मुद्दों और अनुभवजन्य परिणामों पर विचार करता है जो शामिल विभिन्न नीति क्षेत्रों के बीच अंतरसंबंध, व्यापार-बंद और तालमेल का पता लगाता है। भारत में मानवजनित ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन सूची का अनुमान 1991 में सीमित पैमाने पर शुरू हुआ जिसे बढ़ाया और संशोधित किया गया, और आधार वर्ष 1990 के लिए पहली निश्चित रिपोर्ट 1992 में प्रकाशित हुई (मित्रा, 1992)। UNFCCC (NATCOM 2014) द्वारा सभी ऊर्जा, औद्योगिक प्रक्रियाओं, कृषि गतिविधियों, भूमि उपयोग, भूमि उपयोग परिवर्तन और वानिकी और अपशिष्ट प्रबंधन प्रथाओं से भारतीय उत्सर्जन की एक व्यापक सूची तैयार की गई है। तालिका 1 भारत के प्रारंभिक राष्ट्रीय संचार के तत्वावधान में रिपोर्ट किए गए ग्रीनहाउस गैस इन्वेंट्री अनुमानों

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 11 Issue 12, December- 2021
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018 |Thomson Reuters Researcher ID: L-5236-2015

का सारांश प्रस्तुत करती है। 1990 और 2000 के बीच भारत से CO2 समकक्ष उत्सर्जन की मिश्रित वार्षिक वृद्धि दर (CAGR) प्रति वर्ष 4.2% की समग्र वृद्धि दर्शाती है (तालिका 2)। क्षेत्रीय आधार पर, उत्सर्जन में अधिकतम वृद्धि औद्योगिक प्रक्रिया क्षेत्र (21.3% प्रति वर्ष) से है, इसके बाद अपशिष्ट क्षेत्र से उत्सर्जन (7.3% प्रति वर्ष) है। ऊर्जा क्षेत्र के उत्सर्जन में केवल 4.4% प्रति वर्ष की वृद्धि हुई है, जबकि कृषि क्षेत्र से उत्सर्जन में लगभग कोई वृद्धि दर्ज नहीं की गई है। पिछले एक दशक में भारत में सीमेंट और इस्पात उत्पादन में वृद्धि को औद्योगिक प्रक्रिया क्षेत्र से उत्सर्जन में उल्लेखनीय वृद्धि के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। इसी प्रकार, अपशिष्ट क्षेत्र से उत्सर्जन में वृद्धि को 2000 में गांवों से शहरों की ओर आबादी के बड़े प्रवाह के कारण उत्पन्न कचरे की मात्रा में वृद्धि के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

वन प्रकारों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

वर्तमान जलवायु शासन के तहत प्रत्येक प्रकार के वन में होने वाले संभावित क्षेत्र की तुलना और दो भविष्य के जलवायु परिदृश्यों के तहत प्रत्येक प्रकार के वन में होने वाले परिवर्तनों की भयावहता का पता चलता है। BIOME42 मॉडल CRU3 10-मिनट जलवायु विज्ञान का उपयोग करके भारतीय क्षेत्र में स्थित कुल 10,864 ग्रिड बिंदुओं (10 मिनट x 10 मिनट) के लिए चलाया गया था। मृदा पैरामीटर मानों से संबंधित डेटा में अंतराल के कारण, मॉडल इन ग्रिड बिंदुओं में से केवल 10,429 को वनस्पति प्रकार निर्दिष्ट कर सका। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, एफएसआई डेटाबेस (2.5 मिनट x 2.5 मिनट के बहुत बेहतर रिज़ॉल्यूशन पर उपलब्ध) के साथ तुलना करने से हमें 35,190 एफएसआई ग्रिड से जानकारी का उपयोग करने की अनुमति मिली। BIOME4 द्वारा अनुमानित वन प्रकारों और FSI द्वारा निर्दिष्ट वन प्रकारों के बीच एक उचित मेल था। इस प्रकार, उष्णकटिबंधीय सदाबहार वन दक्षिणी पश्चिमी घाट और उत्तरपूर्वी क्षेत्र में देखे गए, जबकि समशीतोष्ण वन देवदार/स्प्रूस/देवदार वनों के अनुरूप क्षेत्रों में पाए गए। इस प्रकार, जलवायु परिवर्तन अद्वितीय वन पारिस्थितिकी तंत्र और जैव विविधता को अपरिवर्तनीय क्षति पहुंचा सकता है, जिससे कई प्रजातियां स्थानीय और वैश्विक स्तर पर विलुप्त हो सकती हैं (आईपीसीसी, 2017 ए और 2017 बी)। वन पारिस्थितिकी तंत्र को अनुकूलन के लिए सबसे लंबे समय तक प्रतिक्रिया समय की आवश्यकता होती है, उदाहरण के लिए प्रवासन और पुनर्विकास के माध्यम से। इसके अलावा, वन क्षेत्र में अनुकूलन रणनीतियों को विकसित करने और लागू करने में एक लंबी गर्भधारण अवधि शामिल है। आईपीसीसी और गीताय एट अल द्वारा अध्ययन की समीक्षा। (2002) से पता चला है कि अनुमानित जलवायु परिवर्तन के कारण वन जैव विविधता या प्रजातियों के संयोजन में परिवर्तन होने का अनुमान है। अनुमानित जलवायु परिदृश्यों के तहत वन या वनस्पति प्रकारों में परिवर्तन या बदलाव (57 से 60% वन ग्रिडों में), क्षणिक चरण के दौरान वनों की समाप्ति, और विभिन्न प्रजातियों के जलवायु परिवर्तन के प्रति अलग-अलग प्रतिक्रिया के कारण जैव विविधता प्रभावित होने की संभावना है। कोई परिवर्तन नहीं होने पर अतिरिक्त दबाव होगा और सामाजिक-आर्थिक दबावों के परिणामस्वरूप जैव विविधता में गिरावट बढ़ेगी।

समुद्र तल से वृद्धि

समुद्र के स्तर में वृद्धि और तापमान में वृद्धि से तटीय पारिस्थितिकी तंत्र प्रभावित होगा। भारी आबादी वाले मेगा डेल्टा क्षेत्र, विशेष रूप से, बढ़ती बाढ़ के कारण सबसे अधिक जोखिम में होंगे। गोदावरी, सिंधु, महानदी और कृष्णा तटीय डेल्टा में परिवर्तन संभावित रूप से लाखों लोगों को विस्थापित करेगा। अनुमानित समुद्र स्तर में वृद्धि से जलीय कृषि उद्योगों को नुकसान हो सकता है, और पहले से ही गिर रही मछली उत्पादकता में वृद्धि हो सकती है। तटीय लहरों और चक्रों की आवृत्ति और तीव्रता में वृद्धि का जोखिम भी अधिक होगा (भारत सरकार, 2015)। यदि आज समुद्र स्तर में एक मीटर की वृद्धि होती है, तो यह भारत में 7 मिलियन लोगों को विस्थापित कर देगा (एडीबी, 2016)। भविष्य में और भी कई लोग विस्थापित हो सकते हैं. एक मीटर की वृद्धि से बांग्लादेश की लगभग 35% भूमि जलमग्न हो जाएगी। 1989 की कीमतों के अनुसार, अमेरिका के लिए समुद्र के स्तर में वृद्धि के प्रति संवेदनशील क्षेत्रों में दीवारें बनाने की लागत का अनुमान $107 बिलियन है। यह विकसित देशों के सकल घरेलू उत्पाद का एक छोटा सा

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 11 Issue 12, December- 2021
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018 |Thomson Reuters Researcher ID: L-5236-2015

हिस्सा हो सकता है, लेकिन ऐसे उपायों, यहां तक कि बांग्लादेश के लिए उनके समुद्र तट के विस्तार के लिए, इसके सकल घरेलू उत्पाद के एक बहुत बड़े हिस्से की आवश्यकता हो सकती है। ऐसी दीवार के लिए बांग्लादेश या भारत को भुगतान कौन करेगा? यह देखते हुए कि इन देशों के सुरक्षात्मक उपायों के लिए भुगतान करने में सक्षम होने की संभावना नहीं है, बांग्लादेश में लाखों लोग विस्थापित होंगे और उनमें से कई भारत में आ सकते हैं (पारिख और पारिख 2002)। समुद्र स्तर में परिवर्तन दो प्रकार के हो सकते हैं: (i) औसत समुद्र स्तर में परिवर्तन; और (ii) चरम समुद्र स्तर में परिवर्तन। दुनिया के विभिन्न हिस्सों में विभिन्न बंदरगाहों पर स्थित ज्वार गेज द्वारा दर्ज किए गए पिछले समुद्र स्तर माप के विश्लेषण से पता चला है कि पिछली शताब्दी के दौरान समुद्र स्तर में औसतन 1 से 2 मिमी/वर्ष की वृद्धि हुई थी। इन परिवर्तनों को आम तौर पर ग्लोबल वार्मिंग के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है। ग्लोबल वार्मिंग के विभिन्न परिणाम जैसे समुद्री बर्फ का पिघलना, समुद्र में तापमान में वृद्धि के कारण मात्रा में विस्तार आदि, वैश्विक समुद्र-स्तर में वृद्धि में योगदान कर सकते हैं (चर्च एट अल।, 2017)। बंगाल की खाड़ी में चक्रवातों की घटनाओं पर हाल के अध्ययनों से पिछली सदी के दौरान कोई रुझान नहीं दिखा है। तटीय क्षेत्रों में, विपरीत बैरोमीटर के प्रभाव की तुलना में हवा का तनाव एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत में, तूफानी लहरों पर पहले के अधिकांश अध्ययन इनपुट के रूप में चक्रवात के ट्रैक और चक्रवात में दबाव में गिरावट के आधार पर विशेष घटनाओं पर संख्यात्मक मॉडलिंग पर आधारित थे। चक्रवात मापदंडों का उपयोग करके गणना की गई पवन क्षेत्रों का उपयोग तूफान वृद्धि मॉडल को चलाने के लिए किया जाता है। भारत के तट पर समुद्र के स्तर में वृद्धि का अनुमान पिछले ज्वार गेज डेटा का विश्लेषण करके लगाया गया था। विश्लेषण के लिए विचार किए गए स्टेशनों में, मुंबई, विशाखापत्तनम और कोच्चि में समुद्र-स्तर में 1 मिमी/वर्ष से थोड़ा कम की वृद्धि देखी गई; हालाँकि, चेन्नई के विश्लेषण में कमी की दर देखी गई। समुद्र के स्तर में शुद्ध वृद्धि प्राप्त करने के लिए ऊर्ध्वाधर भूमि आंदोलनों पर माप को घटाकर इन अनुमानों को सही करने की आवश्यकता है, जो वर्तमान में उपलब्ध नहीं हैं।

स्वास्थ्य

लाखों लोगों की स्वास्थ्य स्थिति प्रभावित होने का अनुमान है, उदाहरण के लिए, कुपोषण में वृद्धि, चरम मौसम की घटनाओं के कारण मौतों, बीमारियों और चोटों में वृद्धि, दस्त संबंधी बीमारियों का बोझ बढ़ना, जमीन की उच्च सांद्रता के कारण कार्डियोरेस्पिरेटरी रोगों की आवृत्ति में वृद्धि -जलवायु परिवर्तन और कुछ संक्रामक रोगों के परिवर्तित स्थानिक वितरण से संबंधित शहरी क्षेत्रों में ओजोन का स्तर (आईपीसीसी, 2007)। अपनी तीसरी मूल्यांकन रिपोर्ट में, संयुक्त राष्ट्र आईपीसीसी ने निष्कर्ष निकाला कि "जलवायु परिवर्तन से मानव स्वास्थ्य के लिए खतरे बढ़ने का अनुमान है"। जलवायु परिवर्तन मानव स्वास्थ्य को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर सकता है (उदाहरण के लिए, थर्मल तनाव के प्रभाव, बाढ़ और तूफान में मृत्यु/चोट) और अप्रत्यक्ष रूप से रोग वैक्टर (जैसे, मच्छरों), जलजनित रोगजनकों, पानी की गुणवत्ता, वायु गुणवत्ता और भोजन की सीमा में परिवर्तन के माध्यम से। उपलब्धता और गुणवत्ता। इसलिए, वैश्विक जलवायु परिवर्तन मानव स्वास्थ्य की रक्षा के लिए चल रहे प्रयासों (आईपीसीसी, 2017ए और 2017बी) के लिए एक नई चुनौती है। भारत में, पाँच वर्ष से कम उम्र के लगभग आधे बच्चे और एक तिहाई से अधिक वयस्क कुपोषित हैं। बिहार, छत्तीसगढ़, झारखंड, मध्य प्रदेश और उड़ीसा में पांच में से दो से अधिक महिलाएं कुपोषित हैं। एनीमिया भारत में एक और प्रमुख पोषण संबंधी स्वास्थ्य समस्या है, खासकर महिलाओं और बच्चों में। 6 से 59 महीने की उम्र के बच्चों में से अधिकांश (70%) एनीमिया से पीड़ित हैं। भारत में आधे से अधिक महिलाएं (55%) और एक-चौथाई पुरुष एनीमिया से पीड़ित हैं। एनीमिया के परिणामस्वरूप मातृ मृत्यु, कमजोरी, शारीरिक और मानसिक क्षमता में कमी, संक्रामक रोगों से रुग्णता में वृद्धि, प्रसवकालीन मृत्यु, समय से पहले प्रसव, जन्म के समय कम वजन और (बच्चों में) संज्ञानात्मक प्रदर्शन, मोटर विकास और शैक्षिक उपलब्धि में कमी हो सकती है (आईआईपीएस, 2007)). जलवायु में परिवर्तन से आवृत्ति बदलने, संचरण के मौसम को लंबा करने और महत्वपूर्ण वेक्टर जनित बीमारियों की भौगोलिक सीमा में परिवर्तन होने की संभावना है, जिनमें मलेरिया और डेंगू सबसे महत्वपूर्ण हैं। जलवायु परिस्थितियों और वेक्टर जनित बीमारियों के बीच संबंध के ऐतिहासिक प्रमाण

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 11 Issue 12, December- 2021
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018 |Thomson Reuters Researcher ID: L-5236-2015

हैं। मलेरिया एक बड़ी सार्वजनिक स्वास्थ्य चिंता का विषय है और ऐसा लगता है कि यह वेक्टर जनित बीमारी है जो दीर्घकालिक जलवायु परिवर्तन के प्रति सबसे अधिक संवेदनशील है। अत्यधिक स्थानिक क्षेत्रों में मलेरिया मौसम के अनुसार बदलता रहता है। भारत में मलेरिया और चरम जलवायु घटनाओं के बीच संबंध का लंबे समय से अध्ययन किया गया है। पिछली शताब्दी की शुरुआत में, नदी-सिंचित पंजाब क्षेत्र में समय-समय पर मलेरिया महामारी का अनुभव हुआ। अत्यधिक मानसूनी वर्षा और उच्च आर्द्रता को शुरुआत में ही मच्छरों के प्रजनन और अस्तित्व को बढ़ाने वाले एक प्रमुख प्रभाव के रूप में पहचाना गया था। हाल के विश्लेषणों से पता चला है कि अल नीनो घटना के बाद वर्ष में मलेरिया महामारी का खतरा लगभग पांच गुना बढ़ जाता है। बढ़ते वैश्विक तापमान से मानव निर्मित और प्राकृतिक वायुजनित कणों, जैसे कि पौधों के पराग, दोनों के स्तर और मौसमी पैटर्न प्रभावित होते हैं, जो अस्थमा को ट्रिगर कर सकते हैं। लगभग 6% बच्चे श्वसन पथ के संक्रमण से पीड़ित हैं और 2% वयस्क अस्थमा से पीड़ित हैं (आईपीसीसी, 2017ए और 2017बी)। यदि जलवायु परिवर्तन को रोकने और इसके परिणामों के लिए तैयारी करने के लिए तत्काल कार्रवाई नहीं की गई (डब्ल्यूएचओ, 2008) तो अगले 10 वर्षों में अस्थमा से होने वाली मौतों में लगभग 20% की वृद्धि होने की उम्मीद है।

बढ़ा हुआ तापमान और चरम घटनाएँ

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से गर्म दिनों, लू, सूखे (जल स्तर में गिरावट, फसल की विफलता, आदि) और चक्रवातों के परिणामस्वरूप प्राकृतिक आपदाओं की आवृत्ति में वृद्धि होगी। कोठावले (2015) ने 1970-2002 की अवधि के लिए भारत में फैले 40 स्टेशनों के डेटा का उपयोग करके भारत में चरम तापमान का अध्ययन किया, और नोट किया कि गर्मी की लहर की स्थिति जून की तुलना में मई में अपेक्षाकृत अधिक होती है, जबकि गर्मी की लहरें बहुत कम होती हैं। मार्च और अप्रैल के महीने में. उन्होंने यह भी कहा कि प्री-मॉनसून सीज़न के दौरान गर्म दिनों की संख्या भारत के मध्य भाग में अधिकतम और भारत के पश्चिमी तट पर सबसे कम होती है। गर्म वातावरण में, अधिक गर्मी की बारिश की उम्मीद है। हाल के आंकड़ों से पता चला है कि गर्म जलवायु में हिमालय और आल्प्स की ऊंची पर्वत श्रृंखलाओं पर बर्फबारी कम हुई है। निचले क्षोभमंडल में छोटे धूल कणों की बढ़ती सांद्रता के कारण ज्यादातर दक्षिण भारत में दिखाई देने वाले मानसूनी बादल भी कम हो जाते हैं और इस प्रकार ग्रीष्मकालीन मानसूनी वर्षा भी कम हो जाती है। भारत में मौसम संबंधी माप का विश्लेषण पहले से ही उत्तर और दक्षिण भारत के बीच न्यूनतम तापमान और बादलों की मात्रा के रुझान में बड़े अंतर का संकेत देता है। दुनिया भर में जलवायु परिवर्तन के परिणामों के कई गंभीर उदाहरण उपलब्ध हैं। एक सदी से भी अधिक समय में दर्ज किए गए सबसे गर्म वर्षों में से नौ 1988 के बाद से हुए हैं। दुनिया भर में, जुलाई 1988 अब तक का सबसे गर्म महीना था। 2015 में, भारत ने 50 वर्षों में सबसे खराब गर्मी का अनुभव किया, जिसमें 3,000 से अधिक लोगों की जान चली गई। 1999 में उड़ीसा के उष्णकटिबंधीय चक्रवात ने लगभग 10,000 लोगों की जान ले ली। गंगोत्री में हिमालय और ग्लेशियर प्रति वर्ष 18 मीटर की दर से पीछे हट रहे हैं। ग्रीनहाउस गैस सांद्रता में वृद्धि के भविष्य के परिदृश्यों के तहत, 21वीं सदी में वर्षा और तापमान में उल्लेखनीय वृद्धि का अनुमान लगाया गया है। CO2 सांद्रता दोगुनी होने की स्थिति में भारत की जलवायु 2.33 से 4.78 o C तक गर्म हो सकती है। 1980 के दशक के संबंध में 2040 तक वार्षिक तापमान में 0.7 से 1.0 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि की भविष्यवाणी की गई है। देश के एक बड़े हिस्से में बारिश के दिनों की संख्या में कुल मिलाकर गिरावट आई है। यह गिरावट पश्चिमी और मध्य भागों में अधिक (15 दिनों से अधिक) है, जबकि हिमालय की तलहटी के पास और उत्तर-पूर्व भारत में, बारिश के दिनों की संख्या 5 से 10 दिनों तक बढ़ सकती है। जलवायु परिवर्तनशीलता और परिवर्तन, जलवायु नीति प्रतिक्रियाओं और संबंधित सामाजिक आर्थिक विकास का प्रभाव जलवायु नीतियों के अवसरों और सफलता को प्रभावित करेगा। विशेष रूप से, विभिन्न विकास पथों की सामाजिक-आर्थिक और तकनीकी विशेषताएं मिशनों, जलवायु परिवर्तन की दर और परिमाण, जलवायु परिवर्तन के प्रभाव, अनुकूलन की क्षमता और कम करने की क्षमता को दृढ़ता से प्रभावित करेंगी।

कृषि उत्पादकता और खाद्य सुरक्षा पर प्रभाव

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 11 Issue 12, December- 2021
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018 |**Thomson Reuters Researcher ID: L-5236-2015**

भारत मुख्य रूप से एक कृषि प्रधान देश है, जिसमें ख़रीफ़ से लेकर रबी तक विभिन्न प्रकार की फ़सलें उगाई जाती हैं। भारत में अनाज उत्पादन में ख़रीफ़ फ़सलों का योगदान लगभग 78% और खाद्य उत्पादन में रबी फ़सलों का योगदान लगभग 72% है। भारतीय अर्थव्यवस्था पूरी तरह से कृषि उत्पादकता पर निर्भर है क्योंकि यह अकेले सकल घरेलू उत्पाद में 27% से अधिक का योगदान देती है। भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ी आबादी वाला देश है और निकट भविष्य में बढ़ती आबादी की खाद्य मांगों को पूरा करने के लिए उच्च कृषि उत्पादकता की आवश्यकता होगी। भारत में कृषि उत्पादकता पूरी तरह से जलवायु और भूमि संसाधनों, विशेष रूप से मिट्टी और पानी पर निर्भर करती है। वर्तमान में, हिमालय और प्रायद्वीपीय नदी प्रणालियाँ और मानसून प्रणाली सिंचाई के लिए पानी की सभी आवश्यकताओं को पूरा करती हैं, जो बदले में, उच्च कृषि उत्पादकता का समर्थन करती हैं (कृष्णन एट अल 2020)। 2017 आईपीसीसी रिपोर्ट के अनुसार, 2070 तक भारत में औसत तापमान ख़रीफ़ उगाने वाली भूमियों में 0.4° से 2.0°C और रबी पर निर्भर भूमियों में 1.1° से 4.5°C बढ़ने का अनुमान है (IPCC रिपोर्ट 2017)। यह भी अनुमान लगाया गया है कि मानसून प्रणाली की शुरुआत का समय बदल सकता है और सूखे और बाढ़ की आवृत्ति बढ़ सकती है। उल्लेखनीय है कि पिछले कुछ वर्षों में, देश के क्षेत्रों में अक्सर बाढ़, सूखा, असामान्य भारी वर्षा, भूस्खलन और चक्रवात सहित चरम घटनाओं का अनुभव हुआ है। भारत में नदियों के प्रमुख स्रोतों में से एक, हिमालय के ग्लेशियर हाल के दशकों में पीछे हट रहे हैं और इस पीछे हटने से आपूर्ति किए जाने वाले पानी की मात्रा में बदलाव आ सकता है। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि भारत में कृषि पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव महत्वपूर्ण है। कृषि स्वयं जलवायु परिवर्तन में एक प्रमुख योगदानकर्ता है क्योंकि यह वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों (नाइट्रस ऑक्साइड और मीथेन) के लगभग एक-तिहाई उत्सर्जन को जोड़ता है। इस तरह के बदलावों से फसल उत्पादकता पर लाभकारी और हानिकारक दोनों प्रभाव पड़ सकते हैं, कुछ क्षेत्रों में उत्पादकता बढ़ सकती है और अन्य में कम हो सकती है। चावल और गेहूं जैसे अनाज भारत में उपभोग के लिए प्रमुख खाद्यान्न हैं और उच्च तापमान के प्रति संवेदनशील हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि तापमान में वृद्धि के साथ उनकी पैदावार कम हो जाएगी, लेकिन वर्षा में वृद्धि के साथ वृद्धि होगी। तापमान में वृद्धि से सेब और जामुन जैसी फलों की फसलों की पैदावार भी कम हो जाएगी, जिनके लिए लंबी सर्दियों की ठंड अवधि की आवश्यकता होती है। यह अनुमान लगाया गया है कि जलवायु परिवर्तन के कारण विकासशील देशों में कृषि उत्पादन में 20% की गिरावट आ सकती है और 2080 तक इन क्षेत्रों में पैदावार औसतन 15% कम हो सकती है (फिशर एट अल. 2015)। कुल मिलाकर, तापमान में वृद्धि का न केवल अनाज, दालों, फलों और सब्जियों की पोषण सामग्री और गुणवत्ता पर बल्कि कपास, चाय, कॉफी, सुगंधित और औषधीय पौधों के गुणों पर भी गंभीर प्रभाव पड़ेगा (बैटिस्ट और नेलोर 2009)।

मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव

जलवायु में बदलाव से पीने के पानी, हवा, भोजन और आश्रय सहित स्वास्थ्य की बुनियादी आवश्यकताओं पर असर पड़ने की संभावना है। गर्म जलवायु मानव स्वास्थ्य पर सकारात्मक या नकारात्मक प्रभाव ला सकती है। हालाँकि, इन प्रभावों की तीव्रता स्थान और तापमान वृद्धि की दर पर निर्भर करेगी। ग्लोबल वार्मिंग के स्थानीयकृत लाभ कुछ क्षेत्रों में हो सकते हैं, जिनमें गीले क्षेत्रों में कम वर्षा, शुष्क क्षेत्रों में अधिक वर्षा और परिणामस्वरूप खाद्य उत्पादन में वृद्धि शामिल है, इसलिए, खाद्य असुरक्षा से संबंधित कम मौतें होती हैं। अन्यत्र, क्षेत्रों में चरम मौसम की घटनाओं (भारी वर्षा, सूखा, भूस्खलन, बाढ़ और जंगल की आग), पानी की कमी, खाद्य उत्पादन की हानि और आप्रवासन का अनुभव हो सकता है जो उन्हें वेक्टर- और जल-जनित, हृदय, श्वसन और डायरिया के प्रति अधिक संवेदनशील बना सकता है। बीमारियाँ, साथ में कीड़ों और कुपोषण से फैलने वाली बीमारियाँ। बढ़ते तापमान का मनुष्यों पर दो विपरीत प्रभाव पड़ता है; सर्दियों में उच्च तापमान से ठंड से होने वाली मौतों में कमी आती है, जबकि गर्मियों में अत्यधिक तापमान से गर्मी से होने वाली मौतों में वृद्धि होती है।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन से पूंजी, पारिस्थितिकी तंत्र, बीमारी और प्रवासन जैसे कई अलग-अलग तरीकों से मानव कल्याण

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 11 Issue 12, December- 2021
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018 |Thomson Reuters Researcher ID: L-5236-2015

को प्रभावित करने की उम्मीद है। मुद्दे के महत्व के बावजूद, यह स्पष्ट नहीं है कि अर्थशास्त्र की वर्तमान स्थिति के साथ मूल्य की गणना कैसे की जाए। एक सार्थक विकास में कम से कम कृषि से गैर-कृषि अर्थव्यवस्था में परिवर्तन शामिल है जिससे कृषि पर निर्भरता कम हो। चूंकि अधिकांश श्रम शक्ति - लगभग 70% - प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से आजीविका और रोजगार के लिए इस क्षेत्र पर निर्भर करती है, ऐसा तब होता है जब यह क्षेत्र अधिक उत्पादक होता है और खाद्य आत्मनिर्भरता सुनिश्चित करता है कि यह विनिर्माण के लिए आवश्यक श्रम और पूंजी जारी करेगा और सेवा क्षेत्र. जलवायु परिवर्तन के बारे में वर्तमान बहस के संदर्भ में, यह दिखाना आवश्यक है कि भारत में निष्क्रियता से दूर, नीतियों, कार्यक्रमों और परियोजनाओं के संदर्भ में काफी कार्रवाई की जा रही है। प्रौद्योगिकी हस्तांतरण से आधुनिकीकरण प्रक्रिया में तेजी आ सकती है और अतिरिक्त धनराशि से सरकार ऊर्जा संरक्षण में तेजी ला सकती है। हालाँकि, गरीबी उन्मूलन की नीतियों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

संदर्भ

[1] अचंता ए एन (2014), "भारतीय चावल उत्पादन पर ग्लोबल वार्मिंग के संभावित प्रभाव का आकलन", जलवायु परिवर्तन एजेंडा: एक भारतीय परिप्रेक्ष्य, टाटा एनर्जी रिसर्च इंस्टीट्यूट, नई दिल्ली।

[2] एशिया न्यूनतम लागत ग्रीनहाउस गैस उन्मूलन रणनीति (एएलजीएएस) (2015), "इंडिया कंट्री रिपोर्ट", एशियाई विकास बैंक, वैश्विक पर्यावरण सुविधा, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम, मनीला, फिलीपींस।

[3] एशियाई विकास बैंक (2016), "एशिया में जलवायु परिवर्तन", वी अस्थाना का लेख।

[4] भास्कर राव डीवी, नायडू सीवी और श्रीनिवास राव बीआर (2017), "उत्तरी हिंद महासागर पर चक्रवाती प्रणालियों के रुझान और उतार-चढ़ाव", मौसम, नंबर 52, पीपी. 37-46।

[5] भट्टाचार्य सुमना, शर्मा सी, धीमान आर सी और मित्रा ए पी (2016), "क्लाइमेट चेंज एंड मलेरिया इन इंडिया", करंट साइंस, वॉल्यूम। 90, क्रमांक 3, पृ. 369-375.

[6] बाउमा एम जे और वैन डेर काए एच (2017), "द एल नीनो सदर्न ऑसिलेशन एंड द हिस्टोरिक मलेरिया एपिडेमिक्स ऑन द इंडियन सबकॉन्टिनेंट एंड श्रीलंका: एन अर्ली वार्निंग सिस्टम फॉर फ्यूचर एपिडेमिक्स?", ट्रॉपिकल मेडिसिन एंड इंटरनेशनल हेल्थ, वॉल्यूम। 1, क्रमांक 1, पृ. 86-96.

[7] चर्च जे ए, ग्रेगरी जे एम, ह्यूब्रेक्ट्स कुह्न एम एट अल। (2017), द साइंटिस्ट बेसिस कंट्रीब्यूशन ऑफ वर्किंग ग्रुप I टू द थर्ड असेसमेंट रिपोर्ट ऑफ द इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑफ क्लाइमेट चेंज, पीपी. 639-693, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज।

[8] साइरानोस्की डी (2015), "क्लाइमेट चेंज: द लॉन्ग-रेंज फोरकास्ट", नेचर, 438, पीपी. 275-276।

[9] डैश एस के और हंट जे सी आर (2007), "वेरिएबिलिटी ऑफ क्लाइमेट चेंज इन इंडिया", करंट साइंस, वॉल्यूम। 93, संख्या 6, पृ. 782-788.

[10] फिशर गुंथर, महेंद्र शाह, हैरिज वान वेल्थुइज़न और फ्रेडी नेचरगेले ओ (2017), "21वीं सदी में कृषि के लिए वैश्विक कृषि-पारिस्थितिकी मूल्यांकन", इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एप्लाइड सिस्टम्स एनालिसिस, पीपी. 27-31, ऑस्ट्रिया।

[11] गायकवाड़ एस ए, कुमार एस, देवोत्ता एस और सिंह आर एन (2014), "भारत में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन से मीथेन उत्सर्जन और इसकी अनिश्चितता विश्लेषण", एपी मित्रा, एस शर्मा, एस भट्टाचार्य, ए गर्ग, एस देवोत्ता और के सेन में (सं.), जलवायु परिवर्तन और भारत: ग्रीनहाउस गैस इन्वेंटरी अनुमानों में अनिश्चितता में कमी, यूनिवर्सिटी प्रेस, हैदराबाद।